**फ़ादर बुल्के : मेरे गुरु भाई**

डॉ.जगदीश गुप्त

जो इलाहाबाद को अपना ‘मैका’ कहे और बार-बार वहाँ जाने को तरसता रहे, ऐसा कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है फ़ादर बुल्के के सिवा | नारी-भावना से एकान्वित उनका यह पुरुष-भाव उन्हें एक प्रकार से अर्धनारीश्वर के निकट ला देता है | नितान्त असाधारण, सर्वथा अप्रतिम, आत्मीयता-प्रदीप्त, विनोद-समन्वित, सदा कर्मशील, धर्म-समर्पित और निष्काम-राम-मय | नहीं तुलसी-मय, वाल्मीकि-मय, रामायण-मय | राम-कथा की विश्वव्यापी प्रतिमूर्ति | एक साथ न जाने कितने आभावों की पूर्ति |

अवस्था में मुझ से बड़े, कद में सवाये ऊँचे खड़े, सफेद गाउन में गौर-शरीर की दुर्बलता छिपाये साइकिल पर सवार, वह आये, वह कान में श्रवण यंत्र लगाये | विदेशी समझकर लोग उनसे अंग्रेजी बोलने लगते हैं और वे हिंदी पर अपनी आस्था तोलने लगते हैं | कैसे हैं ये हिंदी प्रेमी जिन्हें पहचान नहीं मिलती अपना-पराया | कैसे हैं ये देशवासी जिन्हें यहाँ का नागरिक भी लगता है बाहर से आया | वे चकित होते हैं यह सब सोचकर और मैं झुका लेता हूँ, संकोच में अपना सर | वह नागपुर का विश्व हिंदी सम्मेलन हो या हिंदी साहित्य सम्मेलन, या चित्रकूट का रामायण मेला अथवा प्रयाग का कुम्भ | यहाँ का विद्वत् वर्ग उन्हें हमेशा ऊँचा देखता है विदेशी भी शायद उनकी उत्कट हिंदी सेवा को आश्चर्य से देखता है | वे ममता के प्रति जितने कोमल उदार हैं, जड़ता के लिए उतने ही कठोर, उतने ही दुर्निवार | कभी-कभी मुझे लगता है, जैसे वे ईसा, वाल्मीकि और तुलसी की आराधना के समन्वित अवतार हैं |

आपको यह तुकान्त-प्रियता, यह ‘मुक़फ्फा इबारत’ अब अवश्य खलने लगी होगी | भला आज कहीं कोई इस तरह गद्य लिखता है, सहज भाषा को ऐसे अलंकृत करता है पर मैं क्या करूँ मन कर आया, “गुरु-भाई” के सम्मान में अपने कवि व्यक्तित्व का थोड़ा दुरुपयोग करने का, और सदुपयोग भी इससे बड़ा और क्या हो सकता है उसका | मैंने उनके चित्र भी आंके हैं | एक नहीं कई, आज से नहीं तबसे, जब से मैं, भारती और वे साथ-साथ पढ़ते थे, प्रयाग विश्वविद्यालय में, डॉ.धीरेंद्र वर्मा के प्रधान शिष्यत्व में | अब वही परिदृश्य आँख के आगे आ रहा है, उसी से आरम्भ करता हूँ, उनकी और अपनी राम-कहानी |

सन 1945 से 1947 का समय था | बी.ए. पास करके मैंने और धर्मवीर भारती ने हिन्दी में ही एम.ए. करने का निश्चय किया | जहां इस समय प्रयाग विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग में सान्ध्य कक्षा समेत एम.ए के तीन सेक्शन हो गये हैं, जिनमें दिन का एक सेक्शन कभी-कभी 160 छात्रों से ऊपर चला जाता है, उस समय दशमांश मात्र था यानी केवल एक सेक्शन, वह भी करीब सोलह जनों का | तीन चौथाई लड़के, एक चौथाई लड़कियाँ | आज तो छात्रायें आधे से अधिक होने लगी हैं | हिंदी ही क्यों, अन्य अनेक विषयों पर महिला-मण्डल छा गया है, लेकिन तब अधिकतर पुरुषों का वर्चस्व था, यानी छात्र छात्राओं से अधिक थे हाँ, उनमें से किसी को कल्पना नहीं थी कि कोई पादरी, हिंदी पढ़ने आयेगा, उनका सहपाठी बनेगा | सबकी आँखें स्याह दाढ़ी वाले इस विदेशी साधु पर जाती थीं | उनकी जिज्ञासा आश्चर्य में बदल जाती थी जब वे यह जानते कि हिंदी ही नहीं, वह संस्कृत का भी ज्ञाता है और बी.ए. में संस्कृत पढ़कर हिंदी ज्ञान के लिए भी कलकत्ते से प्रयाग आया है | आज उनकी दाढ़ी उनके गाउन की तरह सफेद हो गयी है, पर मैंने शोध छात्र हो जाने पर सन् 1950 के लगभग उनका जो तैल-चित्र बनाया था | उसमें वह काली भूरी ही अंकित है | वे एम.ए के बाद डॉ. माता प्रसाद गुप्त के निर्देशन में “रामकथा” पर शोध कार्य रहे थे | और मैं भारती, दोनों भिन्न विषयों पर धीरेंद्र जी के निर्देशन में | आज मैं “तुलसीदास” पढ़ाता हूँ, पर उस समय एक विशेषज्ञ के नाते डॉ. माता प्रसाद गुप्त ही पढ़ाते थे | धीरेंद्र जी ने कदाचित इसीलिये बुल्के जी को उनसे सम्बद्ध किया | वे इतने कर्मठ निकले कि 20 महीनों के निर्धारित समय में ही अपना इतना बड़ा शोध कार्य सम्पन्न कर डाला और “ डी0 फिल0” की उपाधि से विभूषित हो गये-शायद सन् 1950 में, जब कि हम दोनों के साहित्यिक मित्र “परिमल” की गतिविधियों में लीन होने के कारण सन् 52 में “डॉक्टर” कहला सके | बुल्के जी भी परिमल सदस्य थे | पर उनकी प्रतिभा विचारात्मक साहित्य में सुख मानती रही, हम लोगों की तरह रचनात्मक साहित्य के दुःख उन्हें झेलने नहीं पड़े |

 अपने एम.ए के सहपाठियों में जहाँ हम लोग कभी-कभी राजकुमारी तन्खा की ऊँची नाक गोविन्दा आनन्द का गोल चेहरा भी याद कर लेते हैं, बुल्के जो केवल उर्मिला प्रसाद की पतली आवाज़ और ऋषि कुमार सक्सेना की शालीन हंसी का ही स्मरण कर पाते हैं, ऐसा मैं सोचता हूँ | कुमार गिरि वे कभी नहीं बने | अगर बनते तो क्या हम उन्हें यों ही छोड़ते, गाउन उतरवा लेते | पर हम लोग तो उनके हृदय जैसे विशाल, शुभ गाउन की छत्रछाया में अपने को सुरक्षित ही अनुभव करते रहे | खुद हों चाहें जैसे, पर उस समय तो एक सच्चे साधु के सहपाठी होकर सत्संगी बनने का गौरव तो पा ही रहे थे | हम साक्षी हैं | कि बुल्के जी लाक्षणिक अर्थ में उस समय के ओरियन्टल डिपार्टमेन्ट के पास वाली लव-लेन से कभी नहीं गुजरे | हाँ वे किसी के मार्ग में बाधक भी नहीं बने | साधुता का तक़ाजा भी यही होता है—

 मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दुर्गचल |

 बुल्के उस समय कान में यंत्र नहीं लगाते थे पर उन्हें सुनायी कम ही देता था | शायद इसीलिये डॉ.रामकुमार वर्मा की कक्षा में इन्होंने आगे बैठने अनुमति माँगी थी | साहित्य पढ़ने का जो सुख उनकी कक्षा में आता था, वह तो स्मरणीय है ही, पर डॉ. रसाल की कक्षा भी कम सुखद नहीं होती थी | वह “ भवानियों” को सचेत करके निसंकोच श्रृंगारिक छन्द सुना डालते थे | खड़ी बोली की कविता को कविता ही नहीं मानते थे | मैथिलीशरण गुप्त से लेकर डॉ.रामकुमार वर्मा तक उनके लिए कवि ही नहीं थे और अगर थे भी तो केशव, बिहारी, रत्नाकर और स्वयं उनके आगे कुछ ठहरते ही नहीं थे | उनकी तर्क प्रणाली बड़ी रोचक लगती थी, पर उनसे सहमत हो पाना अंततः शायद ही किसी के लिए संभव हुआ हो | उनके निष्कर्ष न मुझे ग्राह्य थे, न भारती को और न बुल्के जी को | बुल्के जी तो उनकी कही हुई बातों पर इतना आश्चर्य प्रकटकरते थे कि क्या कहूँ | बुल्के जी उनके “ क्लास” में सुखी थे, क्योंकि वे तेज बोलते थे | वर्मा जी की तरह नहीं थे | ब्रजभाषा में कविता लिखने के कारण रसाल जी मुझसे तो प्रसन्न ही रहते थे | और भारती भी अपनी लच्छेदार बातों से उन्हें अप्रसन्न नहीं होने देते थे | रही बुल्के जी की बात— वे एक तो ईसाई, दूसरे विदेशी, तीसरे गद्य-प्रिय | तुलसी के प्रति उनकी लगन और आस्था का परिचय रसाल जी को तब तक हो नहीं पाया था, फलतः कोई विशेष आत्मीयता विकसित नहीं हो सकी | “माता जी” के शिष्य से होती भी कैसे , क्योंकि वे व्यंग्य से ऐसी ही संज्ञा देकर डॉ.माता प्रसाद गुप्त को को स्मरण करते-कराते थे और तुलसी के गहन गूढ़ार्थ का उनको अधिकारी ही नहीं मानते थे | वस्तुतः रसाल जी मानस की चौपाइयों का ऐसा अद्भुत पंडिताऊ अर्थ करते थे कि तुलसीदास स्वयं सुनते तो आश्चर्य करते | ऐसी स्थिति में बुल्के जी का भौचकित रह जाना स्वाभाविक ही था |

 हिंदी विभाग द्वारा समायोजित एक गोष्ठी में बुल्के जी ने हनुमान जन्म-कथा पर अपना शोधपूर्ण लेख पढ़ा | वहाँ बैठे थे डॉ.सत्यप्रकाश जो अब सन्यासी हो गये हैं | आर्य समाजी विचारों के वे शुरू से ही थे, धीरेंद्र जी और बाबूराम जी की तरह | “वीर्य” शब्द के बार-बार प्रयोग पर एकदम नाराज हो गये | लेखक चुप | उसने वही लिखा था जो पुराणों में जगह-जगह मिलता है | उसे क्या मालूम था कि आर्य समाजी लोग पुराण कथाओं को पोंगापंथी मानते हैं और प्रजनन-प्रसंग उन्हें सर्वथा अश्लील लगते हैं | चाहे पुराण में हों या कहीं और | बुल्के जी ने यह नहीं कहा कि पुराणों का मूल तो वेदों में ही मिलता है, नहीं तो वितण्डा खड़ा हो जाता | धीरेंद्र जी ने स्थिति सम्भाल ली |

 एक बार मैंने बुल्के जी से पूछा—“ आप को भारत आने की प्रेरणा कैसे हुई ? उत्तर सुनकर विस्मित रह गया | उन्होंने बताया तुलसी की इस चौपाई का जर्मन अनुवाद पढ़कर—”

 “धन्य जनम जगतीतल तासू | पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू ||”

 भाव विभोर होकर कहने लगे— पिता और पुत्र का ऐसा आदर्श सम्बंध, ऐसी उदात्त कल्पना मेरे देश में नहीं थी, योरोपीय साहित्य में मुझे सुलभ नहीं हुई | मैंने मन मे सोचा, जिस देश में ऐसा साहित्य रचा गया, उसके निकट जाना ही चाहिये | जिसने उसे रचा उसे जानना ही चाहिये और उस ग्रंथ को पढ़ना ही चाहिये जिसमें ऐसी बात कही गयी |” उनकी शब्दावली कुछ भिन्न हो सकती है, पर आशय यही था | मुझे भी तुलसी की वाणी का महत्व इस संदर्भ में, नये ढ़ंग से प्रतीत हुआ |

मैंने उनके जीवन के वे संदर्भ भी जानने चाहे जिन्होंने उन्हें मिशनरी बनकर अपने देश से बाहर जाने की प्रेरणा दी | 1 सितम्बर 1909 को जन्म,जन्म स्थान— राममन्दिर | मैं विस्मित हुआ, बेल्जियम में राम मंदिर कहाँ ? उन्होंने लिखकर बताया‌‌‌- Ramskapelle (राम कपैले-राम चैपल) राम(एक आदमी) का प्रार्थनालय | यह असाधरण संयोग है कि रामकथा जैसे विख्यात कृति के लेखक का जन्म योरोप में जहाँ हुआ वहाँ “राम” शब्द पहले से ही विराजमान था, चाहे वह किसी सामान्य जन का नाम ही क्यों न रहा हो | अब तो मेरी दृष्टि में बुल्के जी ही उस आदमी के प्रतिरूप हैं | वे “मनरेसा हाउस” में रहते हैं | तो मुझे वहीं राममंदिर लगने लगता है | राँची में जब मैं उनकी एक शोध-छात्रा की मौखिक-परीक्षा लेने गया, तो देखा कि उन्होंने उस देवालय को पुस्तकालय बना रखा है, और लेखनी ही उनकी समर्चा का साधन बनी हुई है | यों उन्होंने माखन-रोटी से भी मेरा स्निग्ध स्वागत किया, पर वह उनके कमरे में नहीं थी, मुख्य हाल पार करके एक विशेष जलपान-कक्ष में जाना पड़ा | वह परिणीता शोध-छात्रा शीघ्र ही मात बनने वाली थी, इसीलिए उसके प्रति वे और भी सदय हो गये थे | संतान से पूर्व उसे उपाधि प्राप्त हुई मुझे इसका सुख है | उनकी साधुता का मानवीय पक्ष सदा सक्रिय रहा है, पर जहाँ वे असहमत हुए, वहाँ उन्होंने शोध-प्रबंध संशोधनार्थ वापस भी किये हैं |

वे 1935 ई0 में 6 नवम्बर को भारत आये और पहले पहल बम्बई में उतरे | उस पुराने अनुभव को जिन शब्दों में उन्होंने मुझसे कहा-अभी तक मुझे स्मरण हैं—

 चार दिन बम्बई में रहा, दंग रह गया | कार रुक गयी, एक गाय सड़क पार कर रही थी| बहुत विचित्र लगा | कपड़े इतनी तरह के कि लगा कोई फिल्म चल रही हो | फुटपाथ पर सोते लोगों को देखकर अजब लगा |

 गुजराती और ब्रजभाषा कृष्ण-काव्य के तुलनात्मक अध्ययन के संदर्भ में जब मैं अपनी शोधयात्रा क्रम में गुजरात होकर पहली बार बम्बई गया तो मुझे भी फुटपाथ पर सोते हुए इतने आदमी देखकर आश्चर्य हुआ था | सड़क पर घूमती गायों का अनुभव तो अखिल भारतीय गौरव रखता है | उससे प्रेरित होकर मैंने कभी दो पंक्तियाँ लिखी थीं—

 हे गऊ माता |

 राह में चलना तुम्हें नहीं आता ||

दोनों गुरुभाइयों का अनुभव प्रायः एक जैसा रहा | “ समान शील व्यसनेषु सख्यम्” व्यसन के नाम पर तो उन्हें विद्या-व्यसन ही रहा | हाँ, शील के वे साकार स्वरूप ही हैं | मैंने उनके हिंदी ज्ञान के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की तो वे बताने लगे— “1938 के बाद धर्म-विज्ञान का अध्ययन चार वर्ष तक दार्जिलिंग के पास कर्सियांग में किया | वहाँ काका कालेकर आये, मैं सभापति बना, हिंदी में बोला तो काका जी ने सराहा | इस अपनत्व ने मुझे बहुत प्रभावित किया जिससे हिंदी की ओर प्रवृत्ति और बढ़ी | उसी वर्ष हजारीबाग के सीतागढ़ में एक वर्ष विकल्प में हिंदी पढ़ी | वहीं “रामचरितमानस” से पूरा परिचय हुआ | बचपन में जर्मन भाषा में अनुदित “धन्य जनम जगतीमल तासू” वाली चौपाई से परिचय हो ही चुका था | 1940 में सुनीति बाबू जी ने कलकत्ता सेंट ज़ेवियर्स में जाकर उदयनारायण तिवारी जी से परिचय कराया | मैंने हिंदी में बोला तो दोनों ही प्रभावित हुये | 1942-45 के बीच बी.ए. संस्कृत विषय लेकर कलकत्ता विश्वविद्यालय से किया | एक वर्ष की मौन साधना के बाद The Theism of Nyaya vaisheshika अंग्रेजी में छप गयी | इससे पूर्व राँची आ गया था जहाँ से दार्जिलिंग भेजा गया | इण्टर साइंस में केमिस्ट्री, फिजिक्स विषय पढ़ाये | जुलाई में हाईस्कूल में पढ़ाया | अंग्रेजी माध्यम था | विद्यार्थियों से हिंदी सीखी |”

यह बयान काफ़ी लम्बा है, पर इसमें वे सारे तथ्य उल्लिखित हैं जिनको जानना बुल्के जी के व्यक्तित्व को जानने के लिए अनिवार्य है | निःसंकोच रूप से हिंदी सीखने के लिए भी वे प्रारम्भ से ही कृतसंकल्प थे, यहाँ तक कि विद्यार्थियों का जीवन बनने में भी उन्हें संकोच नहीं हुआ | 1944 में उन्होंने डॉ.धीरेंद्र वर्मा को प्रयाग आकर हिंदी पढ़ने के लिए पत्र लिखा वह रहा रह गया, फिर भी वे विचलित या हतोत्साहित नहीं हुए | अंततः धीरेंद्र जी को अपनी यह धारणा बदलनी पड़ी कि कोई विदेशी हिंदी में एम.ए. नहीं कर सकता| “विनयपत्रिका” के पदों का सही अर्थ पूछकर जब वे आश्वस्त हो गये, तभी उन्होंने एम.ए. में उन्हें प्रवेश दिया, पर बाद में शोध कार्य देने में भी कोई संकोच नहीं किया | आज उन्हीं बुल्के जी का बनाया अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश बड़े-बड़े सरकारी दफ्तरों में यह अनुवाद कार्य के लिए सबसे उपादेय समझा जा रहा है | लोग उसके द्वारा सही उच्चारण और हिंदी शब्दों के सही प्रयोग का ज्ञान अर्जित करते हैं | उनकी राम कथा हिंदी में लिखी होकर भी देश-विदेश में सम्मानित हुई | उनका किया बाईबिल का हिंदी अनुवाद ईसाई मिशनरियों में सम्मान से पढ़ा जाता है | “सुसमाचार” वास्तव में हिंदी के प्रचार व प्रसार के लिए सुसमाचार ही देता है | उनकी कर्मठता और अद्वितीय हिंदी प्रेम तथा राम काव्य के प्रति भक्ति पूर्ण निष्ठा वास्तव में अप्रतिम है | डॉ. प्रियर्सन के बाद मेरी दृष्टि में डॉ. कामिल बुल्के का नाम हिंदी सेवा की दृष्टि से विशेष स्मरणीय रहेगा | अपने धर्म से अधिक उन्होंने हिंदी का उपकार किया है | ईसाई शिक्षा प्रणाली में हिंदी को उत्तरोत्तर अधिक स्थान के लिए वे सतत प्रयत्नशील रहे हैं, भले ही इस दिशा में उनकी सफलता उतनी विलक्षण एवं असाधारण न हो | भारतीय भाषाओं और बोलियों का आश्रय लेते हुए भी ईसाई शिक्षा प्रणाली अभी तक अंग्रेजी की गुलामी से उसी तरह मुक्त नहीं हो पायी है, जिस तरह हमारी उच्च शिक्षा और उच्च धर्म | बुल्के जी जैसे ईसाई पादरी कितने हैं | जिनके द्वारा ईसाई धर्म स्वयं गौरवान्वित होता है |

भारतीयता और भारत भूमि के प्रति उनका प्रेम अत्यंत गहन और स्वाभाविक है | उसे देखकर पूर्व जन्म के संस्कारों पर विश्वास होने लगता है | इस सम्बंध में उन्हीं के शब्दों में, मैं एक ऐसी बात रखना चाहता हूँ जो साधारण व्यक्ति के द्वारा कही नहीं जा सकती | यथा—

“ मुझे गर्व था, कभी योरोप वापस नहीं जाऊँगा | पिता जी 1970 में गये | परलोक तक मार्ग सभी जगह जाता है अतः मैं भारत से ही स्वर्ग जाऊँगा |” जब मैंने उनसे ये शब्द सुने तो तत्क्षण मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया | गुरु-भाई की गुरुता मेरे भारीपन से कहीं अधिक सिद्ध हुई |

उनके कहने पर मैंने उन्हें कमरे में बंद करके चाभी अपनी जेब में डाली, क्योंकि कम सुनने के कारण संभव है, दरवाजा खट खटाने से वे सबेरे तड़के वापसी यात्रा के लिए न उठ सकें | अपने गुरु-भाई को कैद में डालकर मैं जेलर बन गया था | प्रतिदिन सबेरे दिनभर के लिए दवाई निकाल लेना उनका नियम है | वे भौहें उठाकर नाटकीय मुद्रा में कहते हैं | “ बाप रे | दौरा “कार में बैठकर श्रवण-यंत्र निकाल देते हैं | और हमें छूट देते हुए कहते हैं | अब आप लोग जो चाहें कहें मैं हँस देता हूँ, उनके साथ | वे भी बताते हैं—“ मेरे दाहिने हाथ का अँगूठा कठोर है | वह पिता का द्योतक है | बायें का मुड़ता हुआ, माँ का प्रतीक है | एक छोटा भाई टीचर, एक छोटी बहन विधवा |” मेरी आँखों के आगे उनके परिवार और घरेलू जीवन का पूरा परिदृष्य साकार हो उठता है | मैं उनके हथेली पर वृहस्पति का बड़ा सा “क्रास” देखता हूँ, मुझे लगा इसी ने उन्हें सन्यासी बना दिया—ऐसे धर्म में जिसका प्रतीक “क्रास” ही है |

[ मानस संगम—तुलसी पंचशती वर्ष पर प्रतिमा अनावरण, स्थान-तुलसी उपवन रविवार 10 अगस्त 97

 विदेशी से भारतीय : तुलसी भक्त हिंदी युद्धा : डॉ.कामिल बुल्के ]